प्राक्कथन

द्वितीय भाषा-शिक्षण या अनुशिक्षण के क्षेत्र में होने वाली कठिनाइयों की ओर भाषा-शिक्षकों का ध्यान बराबर गया है। भाषा-विज्ञानियों तथा मनोविज्ञानियों के क्षेत्र के सम्बन्ध में पूर्वानुमान लगाने के प्रयास भी किए जाते रहे हैं। इस प्रकार के पूर्वानुमान लगाने का उद्देश्य पाठ्यक्रम निर्माण तथा भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में सुधार लाना रहा है। इसी के फलस्वरूप "व्यतिरेकी विश्लेषण" (कंट्रास्टिव एनैलिसिस) सिद्धान्त का विकास हुआ। इस सिद्धान्त को भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण योगदान के रूप में माना गया है।

यद्यपि व्यतिरेकी विश्लेषण के अध्ययन को "हागेन तथा वाइनराइख़" के द्विभाषिकताएँ के अध्ययन (1953) से आरम्भ माना जा सकता है लेकिन इसे सैद्धांतिक आधार पर प्रतिपादित करने का श्रेय राबर्ट लाडो को है, जिन्होंने "लिंग्विस्टिकस अक्रास कल्चर" (1957) में इसे सर्वप्रथम व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया। लाडो अपनी उक्त पुस्तक की भूमिका में फ्रीज़ (1945) के मत को उद्धृत करते हुए लिखते हैं कि उत्कृष्ट भाषा-शिक्षण सामग्री वहीं होगी जो दोनों भाषाओं- लक्ष्य-भाषा तथा स्रोत-भाषा की तुलना तथा व्यतिरेकी विश्लेषण के

आधार पर तैयार की गई हो ।

इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों का मुख्य उद्देय भाषा-शिक्षण सामग्री तथा विधियों में सुधार लाना हैं और यह सभी कुछ तभी सम्भव हो सकता है जब भाषा-शिक्षण में होने वाली कठिनाइयों के कारणों का सही-सही पता चल पाए । इसके अनुसार द्वितीय भाषा-शिक्षण के आधार भाषा {मातृभाषा} लक्ष्यभाषा के सीखने में व्याघात पैदा करती है । वे ये भी मानते हैं कि भाषा "आदतों का समुच्चय" है । इन आदतों के साथ सम्बन्धित भाषा का सामाजिक सांस्कृतिक पक्ष भी जुड़ा रहता है ।

"व्याघात" के कारणों का पता लगाने के लिए वे भाषा तथा भाषा की संरचना के व्यतिरेकी बिन्दुओं का चयन करने का प्रस्ताव करते हैं । व्यतिरेकी विश्लेषण के आधार के लिए दोनों भाषाओं का भाषावैज्ञानिक विश्लेषण तथा दोनों विश्लेषणों की व्यवस्थित तुलना आवश्यक है ।

व्यतिरेकी सिद्धान्त "पर्याप्त भाषा-वैज्ञानिक सिद्धान्त" {एडेक्वेट लिंग्विस्टिक थ्योरी" की अपेक्षा रखता है । दो भाषाओं की तुलना के लिए दोनों भाषाओं का पूर्ण तथा व्यवस्थित भाषा-वैज्ञानिक विश्लेषण एवं विवेचन परमावश्यक है । पूर्ण तथा व्यवस्थित विवेचन के लिए पर्याप्त भाषा-वैज्ञानिक सिद्धान्त की आवश्यकता भी स्वयं सिद्ध है जिसके अन्तर्गत ध्वनि-व्यवस्था, वाक्य रचना तथा अर्थ रचना का समुचित अध्ययन किया जा सके । व्यतिरेकी विश्लेषण की दूसरी अपेक्षा

"व्यतिरेकी सिद्धान्त" की भी है, जिसके व्यवस्थित प्रयोग से दोनों भाषाओं के व्यतिरेकी तत्वों को खोजा जा सके ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध दो भाषाओं (स्रोत भाषा 'कश्मीरी' तथा लक्ष्य भाषा 'हिन्दी') की वाक्य संरचना का व्यतिरेकी विश्लेषण प्रस्तुत करता है । प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है :

प्रथम अध्याय में वाक्य के सम्बन्ध में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों की अवधारणाओं को लिया गया है । द्वितीय अध्याय में वाक्य के महत्वपूर्ण तत्त्वों का अध्ययन किया गया है । तृतीय में कश्मीरी तथा हिन्दी वाक्य के तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है । दोनों भाषाओं के बीज वाक्यों का अध्ययन प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में किया गया है । यह अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया गया है । पंचम अध्याय पहले चार अध्यायों का एक प्रकार से निचोड़ है । यहाँ शिक्षण बिन्दुओं का चयन किया गया है ताकि हिन्दी तथा कश्मीरी भाषी को जो व्याघात वाक्य-संरचना के स्तर पर अनुभव होते हैं, उन्हें कम से कम किया जा सके ।

मैं अध्यक्ष हिन्दी विभाग श्रद्धेय गुरुवर डॉ० मुहम्मद अयूब खाँ जो मेरे निर्देशक भी हैं के प्रति आभार प्रकट करने के शब्द मेरे पास नहीं हैं जिन्होंने शोध-कार्य के दौरान मेरा पग-पग पर सहानुभूति पूर्वक पथ-प्रदर्शन किया । उसके अमूल्य परामर्शों के प्रति अपना

भाव प्रकट कर मैं अपना भार हल्का नहीं करना चाहती । भाषा-विज्ञान के पथ की ओर अग्रसर करना उन्हीं के आह्वान का प्रतिफल है ।

मेरे भाई मुख्तार अहमद मीर ने तालिकाएँ एवं चित्र बनाकर मुझे अनुगृहीत किया है ।

अगस्त : 29, 1988

॥ जमीला मीर ॥
एम० ए०, एम० फिल०,
अनुसन्धित्सु,
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय,
श्रीनगर ।